Administrative Organization and Nature of Gupta Polity

मौर्य-साम्राज्य के बाद भारत में फिर एक विशाल साम्राज्य की स्थापना और राजनीतिक शक्तियों को एक सूत्र में संगठित करने का श्रेय गुप्तवंश के शासकों को है। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे शक्तिशाली सम्राटों के नेतृत्व में मगध के लुप्त गौरव का पुनरुद्धार हुआ। फिर, भारत के एक बड़े भाग में विशाल साम्राज्य का संगठन हुआ। इस युग की शासन-पद्धति के अध्ययन के लिए फाहियान का विवरण, अभिलेख और सिक्के, विशाखदत्त का मुद्राराक्षस, कालिदास-ग्रंथावली, कामंदकीय 'नीतिसार' विभिन्न स्मृतियाँ आदि सामग्री उपलब्ध है।

सामंत-पद्धति का विकास—सामंतवाद का विकास इस युग की विशेषता थी, यह बात सही है; परंतु

परिलक्षित हो चुके थे।

इसके विकास के सारे उपकरण इस युग के पूर्व ही देखे जा सकते हैं। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में सामंतवाद का अवशेष या चिह्न तो देखने को नहीं मिलता है, फिर भी उससे वर्णित 'विष्टि' (बेगार) इस बात का द्योतक है कि राज्य-नियंत्रण-व्यवस्था में सामाजिक असमानता और शोषण के सभी तत्त्व मौजूद थे। 'विष्टि' और 'प्रणय' का उल्लेख रुद्रदामन के गिरनार-अभिलेख और वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी मिलता है। गुप्त-अभिलेखों में तो इसके काफी प्रमाण हैं। यहाँ स्मरण रखना होगा कि सामंतवादी पद्धति का जन्म एक ही दिन में नहीं हुआ होगा, बल्कि इसके विकास में काफी समय लगा होगा। भारतवर्ष में यूनान या रोम की तरह गुलामों की व्यवस्था नहीं थी, यद्यपि गुलाम भारतीय समाज-व्यवस्था में भी थे। मौर्य साम्राज्य के बाद देश में विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी और उसके साथ-ही-साथ उत्पादन के साधनों में भी काफी परिवर्तन हुआ।

इस काल में नगरों के स्थान पर गाँवों की वृद्धि हुई और गाँव ही अब उत्पादन के केंद्र बन गए। गाँव व्यापार के केंद्र भी बन गए और यहीं से राज्य को अधिक मात्रा में राजस्व भी मिलना शुरू हुआ। गाँव की आवश्यकताओं की पूर्ति तो होती थी, परंतु व्यापार का वह नियंत्रित रूप जो हम 'अर्थशास्त्र' में पाते हैं, अब नहीं रहा। इस युग (मौर्योत्तरकाल) में हम सिक्कों का अभाव देखते हैं, परंतु स्वर्ण-सिक्कों का प्रचलन इस बात का संकेत देता है कि विलास की वस्तुओं का व्यापार समृद्ध रहा होगा। जिस मात्रा में सोने के सिक्कों का व्यवहार कुषाणकाल और गुप्तकाल में होता था, उससे स्पष्ट है कि यह सोना व्यापार के क्रम में रोम से भारत आता होगा। आंबादी बढ़ रही थी और अब नकद वेतन के स्थान पर जमीन के रूप में वेतन की व्यवस्था हो रही थी।

ग्राम को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रत्येक गाँव में बढ़ई, लोहार, कुम्हार, चमार, पुरोहित, नाई इत्यादि के बसने-बसाने का प्रयत्न हुआ और इनमें से प्रत्येक को खेत का एक छोटा टुकड़ा दे दिया गया, जिससे वे अपना जीवनयापन कर सकें। ये लोग आत्मनिर्भर ग्रामीण व्यवस्था के अभिन्न अंग होते थे। इनका अपना सामाजिक नियम होता था और राज्य की ओर से उन नियमों को मान्यता मिलती थी। सरकारी कार्य के लिए इन्हें अनिवार्य रूप से काम करना पड़ता था। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद जो यह प्रक्रिया चली, उसके फलस्वरूप गाँव अपने-आप में एक इकाई बन गए थे। ग्राम के इस प्रकार के विकास से श्रेणियों का अवच्छेद हुआ। कारीगर अब गाँव में आकर बस गए और अपनी कला वे अपने-आप में सुरक्षित रखने लगे तथा बाप से बेटे में उसका विकास होना शुरू हुआ। गाँव में संकीर्ण मनोवृत्ति का विकास हुआ और जाति-व्यवस्था को इस संकीर्णता से बल मिला। वस्तु-विनिमय द्वारा ये लोग नमक और धातु प्राप्त कर लेते थे। बाहरी संसार से इनका संपर्क कम होता जा रहा था। नगरों का महत्त्व कितना घट गया था, इसका प्रमाण तो हमें फाहियान और हुएनसांग के यात्रा-विवरण पढ़ने से मिलता है।

जहाँ एक ओर ग्राम की आत्मनिर्भरता बढ़ी, वहाँ दूसरी ओर समाज में ब्राह्मणों का प्रभुत्व भी। धर्म के नाम पर जो दान किया जाता था, उससे ब्राह्मणों का आर्थिक महत्त्व बढ़ता जा रहा था। ब्राह्मण ज्योतिष आदि में पारंगत थे और खेती आदि के संबंध में ज्ञानवर्द्धन में किसानों की सहायता करते थे। मध्ययुग में ब्राह्मणों को जो दान मिला, उससे वे काफी समृद्ध भी हो गए थे। सामंती शक्ति के विकास में ब्राह्मणों का काफी योगदान रहा। सेना भी कभी-कभी स्थानीय सामंतों के अधीन होती थी। सामंतवादी पदवियों का उल्लेख भी तत्कालीन अभिलेखों में मिलता है। सामंतवाद का बीजारोपण सातवाहनकाल और कुषाणकाल में हुआ और कुषाणों की राज-व्यवस्था तो सामंतवादी पद्धति पर ही आधृत थी। सामंतों के कुछ निर्धारित कर्तव्य इस प्रकार थे—

(i) राजस्व इकट्ठा करना;
(ii) सशस्त्र सैनिकों की व्यवस्था करना;
(iii) समय पड़ने पर राज्यसभा में उपस्थित होना;
(iv) शुल्क लेकर बंजरभूमि बाँटना;
(v) बाँध, नहर आदि का प्रबंध करना;
(vi) समय पड़ने पर राज्य के लिए अतिरिक्त धन उपलब्ध करना;
(vii) इस शर्त पर जमीन देना कि खेत लेनेवाला अथवा उसका वंशज सैनिक सेवा देगा।

व्यापार में भी धीरे-धीरे सामंतों का प्रभाव बढ़ने लगा। एकाध अभिलेख से इस पर प्रकाश पड़ता है। सामंत लोग व्यापारी और उनके कर्मचारियों के झगड़े में हस्तक्षेप करते थे और जरूरत पड़ने पर राजा से आज्ञापत्र (चार्टर) भी दिलवा देते थे। कुषाणकाल में सामंतवाद का जो रूप विकसित हुआ, उसकी परिणति

गुप्तकाल में हुई और हर्ष के समय तक आते-आते सामंतवाद मान्य व्यवस्था के रूप में स्वीकृत हुआ। हर्ष के अभिलेख और चीनी यात्रियों के विवरण इसके साक्ष्य हैं। **याज्ञवल्क्य-स्मृति, नारदस्मृति, बृहस्पतिस्मृति, कात्यायनस्मृति** और **कामंदकीय नीतिसार** के वैज्ञानिक अनुशीलन से भारतीय सामंतवाद का जो रूप उपस्थित होता है, उसका समर्थन हमें गुप्त-अभिलेखों और अन्यान्य साधनों से भी मिल जाता है।

इस युग में सामंतवादी व्यवस्था का विकास पूर्णरूपेण हो चुका था, जो इस युग की विशेष देन है। शासन की दृष्टि से गुप्त साम्राज्य का स्वरूप ऐसा था कि गुप्तवंशी महाराजाधिराज एवं सम्राट् को अधिपति स्वीकार करते हुए विविध राजा अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक शासन करते थे। गुप्त-शिलालेखों में बहुत-से राजाओं और महाराजाओं का उल्लेख है, जो गुप्त सम्राटों की अधीनता स्वीकार करते थे। इन्हीं को सामंत और महासामंत भी कहा गया है। ये अधीनस्थ शासकों की स्थिति रखते थे। गुप्त सम्राट् महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परमेश्वर आदि कहलाते थे। महाराज हस्तिन् द्वारा उत्कीर्ण कराया गया एक लेख बड़ा महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसमें जहाँ एक ओर वह सम्राट् या महाराजाधिराज के प्रति अधीनता प्रदर्शित करता है, वहाँ दूसरी ओर अपने अधीनस्थ राजाओं और सामंतों का भी उल्लेख करता है। अनेक महाराजाओं का उल्लेख सम्राटों द्वारा भी किया गया है। महाराज द्रोणसिंह के एक शिलालेख में सम्राट् द्वारा उसके अभिषिक्त किए जाने का वर्णन है। अभिषेक द्वारा सम्राट् अपने अधीनस्थ महाराज की सत्ता और अधिकार-क्षेत्र स्वीकार करता था। शक्तिशाली सामंतों को 'सावंतचूड़ामणि' उपाधि दी जाती थी। सभी सामंत सम्राट् के दरबार में उपस्थित होते थे और उसके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित करते थे। स्कंदगुप्त के एक शिलालेख में बड़े आलंकारिक रूप से लिखा गया है कि अभिवादन के लिए झुकते हुए नृपतियों द्वारा वायु के जो झोंके उत्पन्न हुए, उनके कारण सारी उपस्थान-भूमि हिल गई।[1] इन सामंतों की आभ्यंतर नीति पर सम्राट् का कोई अंकुश नहीं रहता था। इनके लेखों में पादानुध्यातः शब्द का व्यवहार है, जिससे इनकी अधीनता का परिचय मिलता है।

साम्राज्य का स्वरूप—गुप्त-साम्राज्य के अंतर्गत सब प्रदेशों पर गुप्त-सम्राटों का सीधा शासन नहीं था। उनके अधीन अनेक महाराजा, राजा और गणराज्य थे, जो अपने आंतरिक शासन में स्वतंत्र थे। सब सामंतों की स्थिति एकसमान नहीं थी। आर्यावर्त के सामंत गुप्त-सम्राट् के अधिक प्रभाव में थे। सुदूरवर्ती सामंत प्रायः स्वतंत्र स्थिति रखते थे और सम्राट् की अधीनता स्वीकार करते थे। यही दशा गणराज्यों की भी थी। शासन की दृष्टि से गुप्त-साम्राज्य को निम्नलिखित भागों में हम बाँट सकते हैं—

गुप्तवंश के सम्राटों के शासन में विद्यमान प्रदेश—ये शासन की सुगमता के लिए भुक्ति और विषयों में बँटे थे।

आर्यावर्त और मध्यप्रदेश के सामंत—इनकी सत्ता यद्यपि पृथक् थी, फिर भी ये सम्राट् की अधीनता में ही समस्त कार्य करते थे।

गणराज्य—ये लोग गुप्तों का शासन स्वीकार करते थे।

अधीनस्थ राज्य—दक्षिण के ऐसे राज्य जिनके राजाओं ने गुप्त-सम्राटों के समक्ष सिर झुका दिया था।

सीमावर्ती राज्य—जो उपहार भेजकर और सम्राट् की आज्ञाओं का पालन कर उन्हें संतुष्ट रखते थे। ये सब गुप्त-सम्राटों के दरबार में भी उपस्थित होते थे।

अनुकूल मित्र राज्य—जो उपहार और कन्यादान आदि उपायों से सम्राट् को संतुष्ट रखते थे।

साम्राज्य इन सभी तत्त्वों को एक साथ लेकर चलता था, इसलिए उन सारे राज्यों की भावनाओं का सम्राट् को आदर करना पड़ता था। प्रजा पर वह कोई कठोर अंकुश नहीं रखता था, बल्कि शांतिमय उपायों से काम लेता था। सद्व्यवहार की मात्रा पर्याप्त रूप मे वर्तमान थी। फाहियान के विवरणों से स्पष्ट है कि

सर्वत्र पूर्ण शांति का राज्य था। कुछ ऐसे भी गुप्तकालीन लेख मिले हैं, जो सर्वथा शासन-व्यवस्था के द्योतक हैं। गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था बहुत उच्चकोटि की थी। समस्त राज्य शासन के सुप्रबंध के लिए मुख्यतः चार भागों में विभक्त था—

केंद्रीय शासन-व्यवस्था,
प्रांतीय (भुक्ति) शासन-व्यवस्था,
जिला-शासन-व्यवस्था (विषय), और
ग्राम-शासन।

सभी शाखाएँ एक-दूसरी से संबद्ध तथा शासित थीं। इनका विवरण नीचे विस्तृत रूप में किया गया है।

केंद्रीय शासन-व्यवस्था—गुप्त-साम्राज्य का शासन सम्राट् में केंद्रित था। गुप्त-शासन अपने को महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभागवत्, परमदैवत्, सम्राट्, चक्रवर्ती, परमभट्टारक आदि विरुद से विभूषित करते थे। समुद्रगुप्त को एक शिलालेख में 'लोकधाम्नो देवस्य' (लोकनियमों के अनुष्ठान और पालन करने भर ही मनुष्य-रूप था, वरन् वह संसार में रहने वाला देवता ही था) कहा गया है। 'दैवी भावना' का विकास भी इस युग में हो रहा था और इसका प्रमाण 'याज्ञवल्क्यस्मृति' और 'नारदस्मृति' में मिलता है। साम्राज्य का अस्तित्व अनेक राज्यों के संगठन से विद्यमान था। सम्राट् की प्रभुता सर्वत्र व्याप्त थी। कर्मदण्डा-लेख में चारों समुद्रपर्यंत सम्राट् के यशविस्तार का वर्णन मिलता है (चतुरुदधिसलिलास्वादितयशसः)। इस बात का समर्थन जूनागढ़ लेख से भी होता है। केंद्रीय शासन से पद्धति का तात्पर्य है, जो राजधानी में शासनकर्ताओं से संबद्ध थी। सम्राट् ही राज्य का प्रधान होता था। एकतंत्रिक शासनप्रणाली में राजा राज्य का सर्वोपरि अधिकारी होता ही है और राज्य की अंतिम सत्ता उसी के हाथ रहती है। गुप्तकाल में कुमारों द्वारा राजपद पाने के लिए ज्येष्ठाधिकार का नियम बराबर नहीं लागू होता था। पिता द्वारा उत्तराधिकारी का चुनाव प्रायः योग्यता के आधार पर होता था। गुप्त-अभिलेखों में उत्तराधिकारी के लिए **तत्परिगृहीत** शब्द का प्रयोग भी मिलता है। उत्तर-भारत में गुप्त साम्राज्य का गृहराज्य काफी बड़ा था, परंतु उसका स्वरूप बहुत-कुछ मांडलिक था और सामंतों द्वारा सम्राट् अपने कर्तव्यों का पालन करता था। बहुत-सारे लोगों ने राजमुद्रा से अंकित फरमान स्वीकार किए थे (गरुत्मकदंकस्वविषयभुक्ति-शासनयाचना—प्रयाग-प्रशस्ति)। सामंतों की भी कई श्रेणियाँ थीं। सम्राट् सर्वशक्तिमान होता था और कोई भी उसके कार्य में हस्तक्षेप का साहस नहीं कर सकता था। गुप्त-सम्राटों ने अपनी वैयक्तिक शक्ति, साहस और प्रताप से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी, अतः शांतिकाल में उनके शौर्य का प्रभाव देखा जा सकता था। समुद्रगुप्त को वरुण और इंद्र के समकक्ष कहा गया है।

मंत्री—सम्राट् को शासन-कार्य में सहायता देने के लिए मंत्री अथवा सचिव हुआ करते थे, जिनकी कोई संख्या निश्चित नहीं थी। अमात्यगण केवल राजा की सहायता करने तथा मंत्रणा देने के लिए नियुक्त होते थे। 'नारदस्मृति' में राज्य की एक सभा का उल्लेख है, जिसके सभासद धर्मशास्त्र में कुशल, अर्थज्ञान में प्रवीण, कुलीन और सत्यवादी थे। राजा इनके साथ राजकार्य की चिंता करता था और इनके परामर्श से कार्य करता था। परंपरागत धर्म, चरित्र और व्यवहार पर देश का कानून आधृत था और जनता का कल्याण तथा लोकरंजन ही शासन का उद्देश्य था। स्मृतिकारों का कथन है कि यदि गुणों के साथ अमात्य परंपरागत मंत्रिकुल का हो तो अधिक उपयोगी होता है। गुप्तयुग में मंत्रियों का पद बहुधा कुलागत होता था। उदयगिरि के लेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के सांधिविग्रहिक शाबवीरसेन को 'अन्वयप्राप्तसाचिव्यो व्याप्ततः सांधिविग्रहः' शब्दों से अलंकृत किया गया है। करमदंडा-लेख इस बात का हवाला देता है कि कुमारगुप्त प्रथम के मंत्री पृथ्वीषेण का पिता शिखरस्वामिन भी चन्द्रगुप्त द्वितीय का मंत्री रह चुका था। इस दिशा में गुप्त-सम्राटों ने स्मृतियों के आदेशों का अक्षरशः पालन किया। एक मंत्री एक से अधिक विभागों के कार्यों का भी संचालन करता था। प्रशस्तिकार हरिषेण एक ही साथ सांधिविग्रहिक, कुमारामात्य और महादंडनायक था। उसका पिता ध्रुवभूति भी महादंडनायक था। शाबवीरसेन अपने समय का प्रकांड पंडित था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने आम्रकार्दव नामक एक योग्य एवं समरजेता व्यक्ति को उच्चपद पर नियुक्त किया। विभिन्न लेखों से क्रमागत मंत्रिपद का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

मंत्रिपरिषद—राजा अपने मंत्रियों की मंत्रणा तथा सहायता से शासन करता था। उनमें से कुछ युद्ध संबंधी और दैनंदिन, दोनों प्रकार के शासन की व्यवस्था करते थे और सम्राट् के साथ युद्धभूमि में भी जाते थे। राजा तथा मंत्रिगण की सम्मिलित रूप से एक मंत्रिपरिषद होती थी। राजा उसका प्रधान होता था और

प्रत्येक विभाग का मुख्य अधिकारी एक-एक मंत्री। मंत्रियों पर विभिन्न विभागों का भार रहता था। कई मंत्रियों के हाथ शासन और सेवा दोनों का भार होता था। **सांधिविग्रहिक, अक्षपटलाधिकृत, महादंडनायक, कुमारामात्य** आदि पदों का उल्लेख विभिन्न लेखों में मिलता है। मंत्रिपरिषद के कारण राज्य-प्रबंध सुचारु रूप से होता था। मंत्रिमंडल में 'पुरोहित' शब्द का उल्लेख इस काल में नहीं मिलता। सांधिविग्रहिक मंत्रिपरिषद का प्रमुख सदस्य था। समस्त केंद्रीय शासन कई विभागों में संगठित था, जिनका प्रबंध प्रधानमंत्री, अमात्य, कुमारामात्य, युवराज कुमारामात्य आदि अधिकारी करते थे। मंत्रिपरिषद में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया जाता था ~~और हम देख चुके हैं कि~~ पश्चिमी प्रांत (सौराष्ट्र) में राज्यपाल की नियुक्ति के प्रश्न पर स्कंदगुप्त ने अपने मंत्रिंपरिषद से गंभीर रूप से विचार-विमर्श किया था। मंत्रिपरिषद की रचना और कर्तव्यों का ब्योरेवार वर्णन गुप्तलेखों में नहीं मिलता है। बिल्सड-अभिलेख में **पार्षद** का उल्लेख मिलता है और प्रयाग-स्तंभलेख में **सभ्यों** का। हो सकता है कि इन दोनों से केंद्रीय मंत्रिपरिषद का कोई संबंध रहा हो। स्थानीय परिषदों की व्यवस्था तो थी ही, क्योंकि इसका प्रमाण हमें उदानकूप-परिषद से मिलता है।

विभिन्न विभाग—केंद्रीय शासन के विविध विभागों को **अधिकरण** कहते थे साम्राज्य के मुख्य पदों पर काम करनेवाले कर्मचारियों को **कुमारामात्य** कहते थे, जो राजघराने के होते थे। ये साम्राज्य की स्थिर सेवा में होते थे और विभिन्न पदों पर काम करते थे। शासनसूत्रों का संचालन इन्हीं के हाथ था। प्रत्येक अधिकरण की अपनी-अपनी मुद्रा होती थी। गुप्तकालीन लेखों से निम्नलिखित अधिकरणों और प्रधान राजकर्मचारियों का पता लगता है—

महासेनापति—सम्राट् स्वयं सेना का संचालन करते थे, परंतु उनके अधीन महासेनापति भी होते थे, जो साम्राज्य के विविध भागों में सैन्य-संचालन के लिए नियुक्त रहते थे। सेना का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी महासेनापति कहलाता था।

रणभांडागारिक—सेना के लिए सब प्रकार की सामग्री जुटाना इसी कर्मचारी का काम था। वैशाली की मुहर में इस कर्मचारी का उल्लेख है।

महाबलाधिकृत—सेना, छावनी और व्यूह-रचना के विभागों का अधिकार इसी के हाथ था। इसके अधीन अनेक बलाधिकृत होते थे। गुप्त-लेख में 'महाबलाधिकृत' और 'महाबलाध्यक्ष' का प्रयोग मिलता है। यह सर्वोच्च सेनाध्यक्ष था। वैशाली-लेख में 'बलाधिकृत' शब्द का उल्लेख है और वह संभवतः सैनिकों की नियुक्ति करता था।

दंडपाशिक—यह पुलिस-विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था। इसके अधीन अनेक कर्मचारी होते थे, जिनमें चौरोद्धरणिक, दूत, भट आदि प्रसिद्ध थे। इसे 'दंडपाशाधिकरणिक' भी कहते हैं।

महादंडनायक—महासेनापति के अधीन यह युद्ध के अवसर पर सेना का नेतृत्व करता था। गुप्तकालीन सेना के तीन प्रधान विभाग थे—पदाति, घुड़सवार और हाथी। महादंडनायक के अधीन महाश्वपति, अश्वपति, महापीलुपति, पीलुपति आदि अनेक सेनानायक रहते थे। साधारण सैनिक को 'चाट' और सेना की छोटी टुकड़ी को 'चमू' कहते थे। चमू का नायक 'चमूप' कहलाता था। युद्ध के लिए परशु, शर, अंकुश, शक्ति, तोमर आदि अस्त्रों का व्यवहार होता था। महादंडनायक न्यायाधीश भी होता था।

महासांधिविग्रहिक—यह पड़ोसी राज्यों, गणराज्यों और सामंतों के साथ संधि या विग्रह की नीति का अनुसरण करता था। यह सम्राट् का अत्यंत विश्वासी और प्रियपात्र होता था और साम्राज्य की नीति निर्धारित करता था। इसे 'सांधिविग्रहाधिकरणाधिकृत' भी कहते थे।

विनयस्थितिस्थापक—धर्मनीति की स्थापना ही इसका मुख्य कार्य था। इसे शांति और व्यवस्था का मंत्री भी कहा गया है।

भांडागाराधिकृत—यह कोष-विभाग का अध्यक्ष होता था।

महाक्षपटलिक—राज्य के सभी आदेशों को सुरक्षित रखना और राजकीय आय-व्यय के ब्योरे को सुरक्षित रखना इसका कार्य था।

सर्वाध्यक्ष—यह केंद्रीय कार्यालय का सर्वाधिकारी होता था।

महाप्रतिहार—यह राजप्रासाद का प्रमुख कर्मचारी होता था।

ध्रुवाधिकरण—यह राज्य-कर वसूल करने का विभाग था। इसके अधीन निम्नलिखित कर्मचारी थे: (क) **शौल्किक**—भूमिकर वसूल करनेवाला; (ख) **गौल्मिक**—जंगलों से राजस्व प्राप्त करनेवाला; **तलवाटक** (?) और **गोप** (ग्रामों के विविध कर्मचारी); **करणिक** और **लेखक** (किरानी)।

पुस्तपाल—यह संभवतः महाक्षपटलिक का सहायक होता था।

अग्रहारिक—यह दानाध्यक्ष होता था।

मंत्रिमंडल के विभिन्न विभागों के सम्मिलित प्रयास से ही केंद्रीय शासन का सफल संचालन होता था। मंत्रिमंडल की राय से राजा शासन करता था। राजाज्ञा पर सरकारी मुहर होती थी और संधिपत्रों तथा सनदों पर 'गरुड़' का चिह्न भी। राजाज्ञा सुनाने के लिए आज्ञापक के सदृश दूतक भी होता था। दूतक को राजा का मुख कहते थे। राजप्रासाद का विभाग बहुत विशाल होता था। महाप्रतिहार और प्रतिहार उसके विविध कार्य सँभालते थे। वैशाली की एक मुद्रा में इनलोगों के लिए 'विनयशूर' उपाधि का उल्लेख मिलता है। गुप्त-लेखों में स्थपतिसम्राट् नामक एक कर्मचारी का उल्लेख है, जिसका संबंध संभवतः स्त्री-विभाग से था। राजदरबार में **चारण** भी होता था, जिसके लिए **प्रतिनर्तक** शब्द का व्यवहार हुआ है। राजा के प्राइवेट सेक्रेटरी भी हुआ करते थे। **युवराजभट्टारक** और **युवराज** पदों पर राजकुल के व्यक्ति ही नियुक्त किए जाते थे। सबसे बड़ा लड़का युवराजभट्टारक और अन्य लड़के युवराज कहलाते थे। शासन में इन्हें अनेक महत्त्वपूर्ण पद दिए जाते थे। कुमारामात्य के रूप में कार्य करनेवाला युवराज **युवराजकुमारामात्य** कहलाता था। सम्राट् के साथ काम करनेवाले युवराज **परमभट्टारकपादीय कुमारामात्य** कहलाते थे। युवराजभट्टारक के साथ काम करनेवाले युवराज **भट्टारकपादीय कुमारामात्य** कहलाते थे। राजकुमार विभिन्न प्रमुख पदों पर नियुक्त किए जाते थे।

न्याय-शासन—नीति और स्मृति के ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि न्याय का विधान पक्षपातरहित होता था। राजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी था। न्यायाधीश स्वयं भी गंभीर विद्वान हुआ करते थे। न्यायालय चार प्रकार के थे—राजा का न्यायालय, पूग, श्रेणी तथा कुल। प्रत्येक न्यायालय अपनी सीमा में स्वतंत्र था। अंतिम निर्णय राजा के समीप ही होता था। समुद्रगुप्त के समय हरिषेण प्रधान न्यायाधीश था। शिखरस्वामी भी न्याय का पंडित था। गुप्तलेखों में **दंडनायक, महादंडनायक, सर्वदंडनायक, महासर्वदंडनायक** आदि न्याय-पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। न्यायालयों में प्रमाण की आवश्यकता होती थी और साक्षी की भी। गुप्तकाल में दंड सरल था। प्रायः अर्थदंड ही दिया जाता था। फाहियान के अनुसार प्रजा नागरिक अधिकारों से इतनी विज्ञ थी कि अपराध का नाम ही नहीं था। ~~फाहियान का विवरण हम ऊपर दे चुके हैं, अतः उसे यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है।~~ गुप्तकाल में न्याय का कार्य अत्यंत सरल रूप से होता था। शारीरिक दंड देनेवाले कर्मचारी को दांडिक कहा जाता था। फाहियान की चोर-डाकुओं से मुलाकात नहीं हुई थी। इससे अनुमान लगाया जाता है कि पुलिस-प्रशासन बहुत उच्चस्तर का था। पुलिस के बड़े अफसरों को **दंडपाशाधिकरण** और **दंडपाशिक** कहते थे।

राजस्व-व्यवस्था : आय—राज्य की आय ~~के कई प्रमुख साधन थे।~~ सबसे अधिक ~~आय~~ भूमि-कर से होती थी, परंतु इसके और भी कई साधनों का उल्लेख तत्कालीन साहित्य और लेखों से मिलता है; जैसे—नियमित कर, सामयिक कर, अर्थदंड, राज्य-संपत्ति से आय और अधीनस्थ सामंतों से प्राप्त उपहार।

नियमित कर के अंतर्गत उद्रङ्ग (भूमि-कर), उपरिकर (भोग-कर), भूतोपात्तप्रत्याय, विष्टि तथा अन्य प्रकार के कर थे। राजा उपज का छठा भाग कर के रूप में लेता था। भूमिकर-संग्रह के लिए **ध्रुवाधिकरण** था और भूमि-संबंधों लेखों को सुरक्षित रखने के लिए **पुस्तपाल, महाक्षपटलिक** तथा **करणिक** थे। भूमि नापने की व्यवस्था भी थी। परिमिति को 'पादवर्त' कहा जाता था। प्रत्येक भूमि की सीमा निर्धारित की जाती थी तथा सरकारी लेखों में उसका विवरण रखा जाता था। भूमि नापनेवाले को 'प्रमातृ', तथा सीमा निर्धारित करनेवालों को 'सीमाकार' या 'सीमाप्रदातृ' कहते थे। भूमि संबंधी झगड़ों के निबटारे के लिए राजा की ओर से 'न्यायाधिकरण' नियुक्त रहता था। कृषि की वृद्धि के लिए कुएँ, तालाब और नहरों का निर्माण किया जाता था। दामोदरपुर-ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि भूमि दान में दी जाती थी। वह बेची नहीं जा सकती थी, ताकि उसकी उपज से दान का उद्देश्य पूरा हो सके। कृष्ट भूमि को क्षेत्र कहते थे। भूमि के और भी कई प्रकार होते थे; जैसे—खिल (बंजर), अप्रहत (जो तोड़ी न गई हो), अप्रतिकर (किसका कर नियत न हुआ हो)। शिलालेखों में वर्णित निम्नांकित कर हैं—

कर, प्रणय—अनिवार्य या स्वेच्छ चंदा; विष्टि—बेगार, पुष्प और चीर से आय, दूध के लिए गाय और यातायात के लिए बैल; चर्मागारक—चमड़ा और कोयला, चारासन (चरागाहों का शुल्क), लवण, क्लिन्न (तेल), किण्व (औषधि), मुक्तवाहन, भट (पुलिस); चाट द्वारा अप्रवेश्य—दशापराध पर किए गए जुरमाने, भोगभाग—खान की आय। उपज के आधार पर भूमि के कई प्रकार थे—**नाल** (खेतिहर भूमि), **खिल**

(परती), **वास्तु** (बस्ती), **अग्रहत** (बिना जोती हुई) और **अग्रदा** (जिससे सरकार को कोई आमदनी नहीं होती थी)।

भूतोपात्तप्रत्याय के अर्थ को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। यह एक प्रकार का कर था, जो भीतर आनेवाली तथा उस स्थान पर पैदा होनेवाली वस्तुओं पर लगाया जाता था। गुप्तकालीन लेखों में स्थूल रूप से जिन 18 प्रकार के करों का निर्देश दिया गया है उनमें इसका विवरण नहीं है। प्रजा से **हिरण्य** के रूप में भी कर वसूल किया जाता था और व्यापारियों से 'चुंगीकर'। अग्रहार ग्राम 'चाट-भाट-प्रवेश-दंड' से मुक्त रहता था।

व्यय—कामंदक के अनुसार राजकीय व्यय द्वारा राजा त्रिवर्ग की उपलब्धि करता था। राजप्रबंध में काफी पैसे खर्च होते थे। राजकर्मचारी राजा की ओर से वेतन पाते थे, जिसका प्रमाण हमें फाहियान से मिलता है। सेना, पुलिस और तत्संबंधी अधिकारियों पर भी राज्य का पर्याप्त खर्च होता था।

कल्याणकारी कार्य—प्रजा के कल्याणार्थ भी बहुत-सारे कार्यों पर खर्च किया जाता था, जैसे—सिंचाई और जल की व्यवस्था के लिए कुएँ, तालाब और नहरों की व्यवस्था की जाती थी। फाहियान ने सार्वजनिक कार्यों का वर्णन किया है। राजा की ओर से मंदिर भी बनवाए जाते थे और उन मंदिरों में शिक्षा का प्रबंध रहता था। अश्वमेध यज्ञों पर काफी खर्च होता था। समुद्रगुप्त ने लाखों गायें दान में दी थी। समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त ने अश्वमेध यज्ञों के अवसर पर काफी दान किया था। मंदिरों तथा ब्राह्मणों को भूमि बहुत बड़े परिमाण में अग्रहार के रूप में दान की जाती थी। दान के लिए जो अधिकारी था, वह **दानाध्यक्ष** कहलाता था। अग्रहारभूमि को 'ब्रह्मदेत', 'देवदेत' कहते थे। इन लोगों को 'विष्टि' लेने का अधिकार था, परंतु 'पुलिस कर' नहीं देना पड़ता था। आकस्मिक आपत्ति से राज्य तथा प्रजा की रक्षा के लिए कुछ कोष भी संचित रखा जाता था। यातायात की सुविधा के लिए सड़कें बनवाई जाती थीं। फाहियान के अनुसार सारे उत्तर भारत में स्थान-स्थान पर औषधालय थे, जहाँ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा होती थी। धर्मशालाओं और पांथशालाओं की भी व्यवस्था थी। गुप्तराजाओं के सिक्कों पर लिखा है, "राजा पृथ्वी को जीतकर और सुरक्षित कर सुचरितों या पुण्य-कार्यों से स्वर्ग को जीतता है।"[1] इससे स्पष्ट है कि वे प्रजाहित के कामों में दत्तचित्त रहते थे। देश की आंतरिक रक्षा और शांतिस्थापना में भी राजा को काफी खर्च करना पड़ता था। गुप्तों ने निश्चित योजना के अनुसार आदर्श शासन-व्यवस्था की, जिससे फाहियान प्रभावित होकर लौटा था। स्मिथ के अनुसार इससे अच्छा शासन भारत में कभी हुआ ही नहीं।

प्रांतीय शासन—गुप्त-शासन कई इकाइयों में बँटा होता था। राष्ट्र, देश, पृथ्वी तथा अवनि से राज्य का बोध होता था। शासन की सुविधा के लिए राज्य प्रांतों में बँटा होता था। प्रांत को **भुक्ति** भी कहते थे। भुक्ति से नीचे **भोग** (डिवीजन), **विषय** (जिला), **वीथि** (तहसील या परगना), **मंडल** (ग्रामसमूह), **पेठक, पार्श्व, ग्राम, पत** और **अग्रहार** होते थे। गुप्तकाल में अग्रलिखित भुक्तियों और प्रांतों के नाम मिलते हैं—

पुण्ड्रवर्धन भुक्ति—(उत्तरी बंगाल और पूर्णिया का कुछ अंश) यहाँ कर्णकायस्थवंशीय उपरिक महाराज जयदत्त और ब्रह्मदत्त का उल्लेख मिलता है।

वर्धमान भुक्ति—(बंगाल का ही एक भाग) महाराज विजयसेन का उल्लेख इसमें मिलता है।

तीरभुक्ति—(तिरहुत) इसका राज्यपाल गोविन्दगुप्त था।

श्रावस्ती भुक्ति (अवध); अहिच्छत्र भुक्ति (बुंदेलखंड)।

मंदसोर—
कौशांबी— } मध्यप्रदेश में ये दोनों प्रांत थे।

सौराष्ट्र—यहाँ पर्णदत्त नामक गोप्ता या राज्यपाल था।

मगध या श्रीनगर भुक्ति—दक्षिणी बिहार (पटना-मुँगेर का क्षेत्र)।

नव्यावकाशिक भुक्ति—यहाँ नागदेव नामक राज्यपाल था।

प्रांतीय शासक को **उपरिक महाराज** कहते थे। विभिन्न लेखों में इसके लिए राष्ट्रीय, भोगिक, भोगपति, गोप्ता आदि शब्दों का भी व्यवहार हुआ है। उपरिक महाराज का पद बहुत ही ऊँचा था। पुण्ड्रवर्धन में चिरातदत्त, मंदसोर में बंधुवर्मा, सौराष्ट्र में पर्णदत्त और वैशाली में गोविन्दगुप्त आदि के नाम मिलते हैं।

इनलोगों के लिए 'उपरिक महाराज राजपुत्र देवभट्टारक' पदवी का भी उल्लेख मिलता है। ये लोग प्रांत में राजा के प्रतिनिधि होते थे, जिनकी नियुक्ति राजा स्वयं करता था। इनलोगों की उपाधि के पूर्व 'तत्पादपरिग्रहीते' शब्द का भी उल्लेख मिलता है। इनलोगों की सहायता के लिए भी प्रांतीय स्तर पर एक परिषद होती थी, जिसमें विभिन्न विभागाध्यक्ष रहते थे। इसका प्रमाण बसाढ़ से प्राप्त अवशेषों से मिलता है। ~~इसका उल्लेख हम चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में कर चुके हैं।~~ ये लोग 'युवराजकुमारामात्य' भी कहलाते थे। इनके अपने-अपने महासेनापति, महादंडनायक आदि प्रधान कर्मचारी होते थे।

जूनागढ़-शिलालेख से प्रांतीय शासन-संबंधी कुछ रोचक तत्त्वों का पता चलता है। वहाँ राज्यपाल की नियुक्ति का प्रश्न एक कठिन कार्य था और काफी विचार-विमर्श के बाद वहाँ पर्णदत्त को नियुक्त किया गया था। अन्य शिलालेखों से निम्नलिखित कर्मचारियों का पता चलता है—सुरश्मिचन्द्र, परिव्राजक महाराज हस्ति। प्रांतीय प्रशासन-यंत्र के दृष्टिकोण से **पुण्ड्रवर्धनभुक्ति** बड़ी ही महत्त्वपूर्ण थी। यह सम्राट् द्वारा नियुक्त एक राज्यपाल के अधीन थी और उसके पास गज, अश्व और पदाति-रूपी तीनों अंगों से सुसज्जित सेना थी। मल्लसारुल-शिलालेख में वर्धमानभुक्ति नामक एक अन्य प्रांत का जिक्र है। इसका प्रशासन **उपरिक कुमारामात्य, चौरोद्धरणिक तदायुक्तक** (खजाने के अधिकारी), **हिरण्यसामुदायिक** और **स्थानिक** (रेशम-उद्योग के अधिकारी) तथा **आवसथिक** (धर्मशालाओं के अधिकारी) चलाते थे। फरीदपुर से प्राप्त शिलालेखों में राज्यपाल स्थाणुदत्त का भी उल्लेख मिलता है।

उपरिक महाराज के पद पर राजकुमार ही नियुक्त होते थे। पुण्ड्रवर्द्धन में राजपुत्र देवभट्टारक, तीरभुक्ति में गोविन्दगुप्त, मध्यभारत के तुमैन में घटोत्कचगुप्त आदि थे। बसाढ़-सील से तीरभुक्ति के प्रांतीय तथा नागरिक शासन और अर्थव्यवस्था पर काफी प्रकाश पड़ता है। इसमें **उपरिक** (राज्यपाल), **कुमारामात्य** (सेनामंत्री), **महाप्रतिहार** (सुरक्षाधिकारी), **तलवर** (स्थानीय अध्यक्ष), **महादंडनायक** (मुख्य सेनाध्यक्ष), **विनयास्थितिस्थापक** (सेंसर-अधिकारी), **महाश्वपति, रणभांडागारिक, आधिकरण** (युद्धकोष-कार्यालय), **दंडपाशाधिकरण** (मुख्य पुलिस-कार्यालय), **तीरभुक्ति उपरिक आधिकरण** (राज्यपाल कार्यालय), ~~**तीरभुक्तिविनयास्थितिस्थापक अधिकरण** (सेंसर-कार्यालय)~~ और **वैशाली अधिष्ठान अधिकरण** (वैशाली के शासक का कार्यालय) की चर्चा है। कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य का एक प्रतिनिधि चिरातदत्त (कर्ण) पुण्ड्रववर्द्धनभुक्ति पर राज्य करता था। **दामोदरपुर प्लेट्स** (443-44 ई॰) तथा 447-48 ई॰ के वैग्राम अभिलेख से कुलवृद्धि नामक एक कुमारामात्य का पता चलता है। सुलतानपुर तथा वालईकुली के अभिलेख (439 ई॰) में शृङ्गवेर **वीथी** में पूर्णकौशिका के अच्युतदास आयुक्तक का उल्लेख मिलता है। कुमारगुप्त के प्रतिनिधि राजकुमार घटोत्कचगुप्त एरण में और बंधुवर्मन दशपुर में प्रांतीय शासक थे। स्कन्दगुप्त के समय पश्चिम में पर्णदत्त और उसका पुत्र चक्रपालित, अंतर्वेदी के जिलाधीश सर्वनाग तथा कोसाक के प्रशासक भीमवर्मन थे।

जिला-शासन—~~प्रांतों के अतिरिक्त जिले (विषय) और उनसे छोटे भी शासन के हलके थे।~~ जिले का अध्यक्ष **विषयपति** सीधे प्रांतीय शासक के प्रति उत्तरदायी था और तन्नियुक्तक कहलाता था। उसका प्रधान कार्यालक 'अधिष्ठान' में होता था, जहाँ अधिकरण अर्थात ऑफिस रहता था। उसकी सहायता के लिए भी स्थानीय प्रतिनिधियों की एक समिति होती थी। विषय में चार सदस्यों की एक गैर-सरकारी परामर्शसमिति कार्य करती थी। इसमें **नगरश्रेष्ठी, सार्थवाह, प्रथम कुलिक** और **प्रथम कायस्थ** होते थे, जो क्रमशः नगर, व्यापार, उद्योग और शासन का प्रतिनिधित्व करते थे। पुण्ड्रवर्धनभुक्ति में **कोटिवर्ष** नामक एक प्रमुख विषय था, जिसका अधिकांश स्वयंभूदेव था और जो उपर्युक्त चार सदस्यों की सामान्य समिति की सहायता से कार्य करता था। इसमें भगवान श्वेतवाराह स्वामी का संदेश था। इनके नाम दान की हुई भूमि थी, जिसका अनुदान पाँच ग्रामों से ली गई भूमि की पट्टियों से मिलाकर बना था। खंडचार और वंचनगर विषयों के भी नाम मिले हैं। मल्लसारुल शिलालेख से ज्ञात होता है कि वर्धमानभुक्ति के अंतर्गत अनेकानेक स्थानीय प्रशासकीय विभाग थे, जो अपने-अपने अध्यक्षों के अधीन थे और उनमें विषयपति भी एक था। फरीदपुर-अभिलेख से ज्ञात होता है कि नव्यावकाशिकभुक्ति में वराकमंडल नामक एक विषय गोपालस्वामी विषयपति के अधीन था। इस जिले में राज्यपाल स्थाणुदत्त ने जजाव नामक एक विषयपति को नियुक्त किया था। इन अभिलेखों में **साधनिक** नामक एक अधिकारी का उल्लेख है, जो संभवतः साधनों या उपायों का प्रबंध करता था। पाटलिपुत्र में राजगृह, गया और क्रिमिला विषय थे। वैशाली भी एक विषय था।

विषयों में लाट विषय (गुजरात), त्रिपुरी विषय (जबलपुर), ऐरिकिन विषय (मालवा) प्रमुख थे। प्रदेशों में **ऐरिकिन, अंतर्वेदी (गंगा का दोआब), वाल्वी (गया), कोटिवर्ष (दिनाजपुर), महाखुशापार, खंडाहापार,**

कुंडधानि आदि प्रमुख थे। देश के शासक को 'गोप्ता' कहते थे और **भुक्ति** के शासक को **उपरिक** या **उपरिक महाराज**। विषयपति प्रायः कुमारामात्य तथा आयुक्तक अथवा मातृविष्णु जैसे सामंत भी होते थे। अंतर्वेदी के सर्वनाग सीधे सम्राट् के अधीन थे, जबकि कोटिवर्ष, ऐरिकिन और त्रिपुरी के विषयपति राज्यपाल के अधीन काम करते थे। मंदसोर-अभिलेख से सेनाधिप अथवा नायक वायुरक्षित तथा उसके पुत्र दत्तभट्ट, राजा प्रभाकर के मुख्य सेनापति का उल्लेख भी मिलता है। **वीथी** नामक एक अन्य क्षेत्रीय इकाई का पता चलता है।

विषयपति अपने जिले के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों (महत्तरों) की नियुक्ति करता था और वे उसकी परामर्शदात्री समिति के सदस्य भी होते थे। उनके कारण जिले के शासन में सर्वसाधारण का भी हाथ रहता था। विषयपतियों (कुमारामात्यों) का गुप्त-शासन में बड़ा महत्त्व था। वे अपने जिले की सुरक्षा, शांति और व्यवस्था के लिए उत्तरदायी थे। उनके अधीन राजकीय कर एकत्र करने के लिए अनेक कर्मचारी रहते थे; जैसे—युद्ध, आयुद्ध, नियुक्त इत्यादि। विषयपति के अधीन भी **दंडपाशिक, चौरोद्धरणिक, आरक्षाधिकृत** और **दंडनायक** रहते थे। **पुस्तपाल** भी विषयों में रहते थे। उन्हें भूमि के क्रय-विक्रय की सारी व्यवस्था सूचित करनी पड़ती थी। भूमि का क्रय तभी कानूनी माना जाता था, जब पुस्तपाल क्रेता का आवेदनपत्र पाकर विक्रय-संबंधी भूमि का स्वामित्व-निर्णय कर लेता और अपनी रिपोर्ट सरकार को लिख भेजता।

विषयपति के लिए निम्नांकित प्रकार की उपाधियाँ मिलती हैं—

कुमारामात्याधिकरण
युवराजभट्टारकपदीय कुमारामात्य
युवराजपदीय कुमारामात्य
परमभट्टारकपदीय कुमारामात्य

} विषयपति के प्रमुख कर्मचारी थे शौल्किक, गौल्मिक, पुस्तपाल और करणिक।

राज्यपाल (विषयपति) की तरह ये कर्मचारी भी पाँच वर्ष के लिए नियुक्त होते थे। दामोदरपुर के प्रथम ताम्रपत्र की तिथि गुप्त-संवत 124 है। इसमें विषय के शासक तथा राजकीय कर्मचारियों के नाम इस प्रकार हैं—

विषयपति—कुमारामात्य वेत्रवर्मन
नगरश्रेष्ठी—धृतिपाल
सार्थवाह—बंधुमित्र
प्रथम कुलिक—धृतिमित्र
प्रथम कायस्थ—शांबपाल
पुस्तपाल—(अ) रिसिदत्त
(ब) जयनंदि
(स) विभुदत्त

स्थानीय शासन—स्थानीय शासन के अंतर्गत नगर और ग्राम का शासन आता था। गुप्तकाल में अनेक नगर थे—तक्षशिला, उज्जैन, मंदसोर, पाटलिपुत्र, सौराष्ट्र आदि। इनके शासन के लिए नगरपालिकाओं का प्रबंध था। नगरों में नगरसभा होती थी। नगरपति **द्रङ्गिक** कहलाता था और वह व्यापारियों तथा नगरवासियों से कर-संग्रह करता था। वह जनता के स्वास्थ्य पर भी ध्यान रखता था। नगरपति की नियुक्ति विषयपति द्वारा होती थी। स्कंदगुप्त के समय पर्णदत्त का पुत्र चक्रपालित सौराष्ट्र में नगरपति के पद पर था। उसने सुदर्शन झील की फिर से मरम्मत करवाई थी। कोटिवर्ष, वैशाली, गिरनार आदि स्थानों का नगरशासन संगठित था। नगर-संबंधी सभी बातों का नियंत्रण नगरसभाओं के अधीन था। शहर में **परपाल** नामक एक कर्मचारी का उल्लेख भी मिलता है। पुरों की निगम-सभाएँ भी विद्यमान थीं। नगरपालिकाओं का मंत्री परपाल उपरिक होता था।

ग्राम-शासन—प्रत्येक ग्राम का अपना क्षेत्रफल होता था। ग्राम के अधिपति को **ग्रामपति** या **महत्तर** तथा **भोजक** कहते थे। ग्रामपति की सहायता के लिए एक छोटी-सी समिति होती थी, जिसे **पञ्चायत** कहते थे। शूद्रक-रचित **मृच्छकटिक** (अंक-9) के अनुसार भोजक के साथ श्रेष्ठिन तथा कायस्थ भी थे। **व्यवहारमंडप** तथा **नगररक्षाधिकृत** की सहायता के लिए **अधिकरणभोजक, महत्तर** आदि भी हुआ करते थे। इस संस्था का उल्लेख गुप्त-लेखों में भी है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सेनापति आम्रकार्दव द्वारा ग्रामपंचायत के सम्मुख एक गाँव तथा 25 दीनार के दान का वर्णन लिखा है। ग्रामपंचायत अपने कार्य में स्वतंत्र थी। केवल कर के

विषय में उसका संबंध केंद्रीय शासन से था। ग्राम-पंचायत के कुछ पदाधिकारियों का उल्लेख दामोदरपुर-ताम्रपत्रलेख (नं० 3) में इस प्रकार है—

महत्तर,

अष्टकुलाधिकारी (आठ कुलों के मुखिया),

ग्रामिक (ग्राम के प्रधान व्यक्ति),

कुटंबिन् (परिवार के मुख्य व्यक्ति)।

इन्हीं चार सभ्यों द्वारा ग्राम-शासन का प्रबंध होता था । ग्रामपति का अधिकार विस्तृत था। वह ग्रामसभा की राय से सब काम करता था। ग्राम में न्याय का अधिकार पंचायत के हाथ था। सुगमता से कार्य चलाने के लिए कई उपसमितियाँ भी थीं। ग्रामपंचायत को कर-संग्रह का अधिकार था। भूमि-विक्रय का भार भी ग्रामपंचायत पर था । विक्रय के बाद मूल्य का छठा भाग राजकोष में जाता था तथा पाँचवाँ भाग ग्रामसभा लेती थी। ग्रामों के आय-व्यय का हिसाब रखनेवाला कर्मचारी तलवाटक कहलाता था। ग्राम-प्रबंध के निरीक्षण के लिए राजा की ओर से एक अधिकारी नियुक्त होता था और उसी के द्वारा राजा को ग्राम-संबंधी बातें ज्ञात होती थीं। भूमि-संबंधी समस्त लेखों का संग्रह पुस्तपाल रखता था।

मल्लासरुल-अभिलेख में **वीथी** (तहसील), **पलद्टक** और पहाड़पुर-अभिलेख में **ग्राम, पार्श्व** और **वीथी** का उल्लेख है। वीथिसभा में दो प्रकार के सदस्य होते थे—**महत्तर** और **कुटुंब**। कार्यालयों में **पुस्तपाल, कायस्थ** और **कुलिक** काम करते थे।

~~आलोचना~~—गुप्त साम्राज्य मौर्य साम्राज्य की तरह केंद्रित और संगठित नहीं था। गुप्त साम्राज्य का संगठन मांडलिक प्रथा पर आधृत था और बहुत-से सामंत गुप्तों की अधीनता में शासन करते थे। वे सम्राट् को वार्षिक कर, दान, भेंट आदि भेजते थे और विशेष अवसरों पर राजसभा में उपस्थित भी होते थे। सम्राट् बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण करते थे ~~और साथ ही विरुद भी।~~ उनकी सहायता के लिए मंत्रिगण हुआ करते थे। मंत्रियों का पद भी पैतृक होता जा रहा था। कई मंत्रियों के हाथ शासन और सेना दोनों ही होते थे। स्थानीय शासन का महत्त्व भी बढ़ रहा था। देश में आंतरिक शांति की स्थापना के लिए आरक्षण-विभाग भी होता था और इस विभाग के प्रधान अधिकारी थे—**दंडपाशाधिकारी** और **चौरोद्धरणिक**। फाहियान को कहीं चोर-डाकू का सामना नहीं करना पड़ा था, गुप्त युग में आदर्श शासन-व्यवस्था की स्थापना हुई थी, जिसका मूलाधार था सामंतवाद।